भारतीय ज्ञान परंपरा में पर्यावरणीय सरोकार

अर्जुन पाराशरी

11

सारांश

यह अध्याय भारतीय ज्ञान परंपरा (Indian Knowledge System – IKS) में निहित पर्यावरणीय सरोकारों का शास्त्रीय, दार्शनिक एवं समकालीन संदर्भों के साथ समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है। वैदिक साहित्य, उपनिषद, दर्शनशास्त्र, बौद्ध–जैन चिंतन, पुराण, महाकाव्य तथा लोक परंपराओं के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि भारतीय सभ्यता में प्रकृति को केवल भौतिक संसाधन नहीं, बल्कि जीवन का अभिन्न एवं पवित्र अंग माना गया है। पृथ्वी को माता, नदियों को देवी, वनों को तपोभूमि और जीव–जंतुओं को सहचर मानने की दृष्टि ने एक गहन पर्यावरणीय नैतिकता का सृजन किया है।

अध्याय में यह भी विवेचित किया गया है कि संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्य (Sustainable Development Goals – SDGs) भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित मूल्यों की समकालीन वैश्विक अभिव्यक्ति हैं। अपरिग्रह (अनावश्यक संग्रह का त्याग), संतोष, सह–अस्तित्व, करुणा और संयम जैसे सिद्धांत आज के पर्यावरणीय संकट, जलवायु परिवर्तन और संसाधन क्षरण की समस्याओं के लिए एक व्यवहारिक एवं मूल्य–आधारित समाधान प्रस्तुत करते हैं। यह अध्ययन न केवल भारतीय सांस्कृतिक चेतना की पुर्नव्याख्या करता है, बल्कि सतत विकास के लिए एक वैकल्पिक, नैतिक एवं समग्र दृष्टिकोण भी प्रदान करता है।

मुख्य शब्दः *भारतीय ज्ञान परंपरा, Indian Knowledge System (IKS), पर्यावरणीय नैतिकता, सतत विकास लक्ष्य, प्रकृति–मानव संबंध, सह–अस्तित्व, पंचमहाभूत, अपरिग्रह, सतत विकास।*

प्रस्तावनाः

समकालीन विश्व एक ऐसे ऐतिहासिक दौर से गुजर रहा है, जहाँ पर्यावरणीय संकट मानव सभ्यता के अस्तित्व के लिए गंभीर चुनौती बन चुका है। जलवायु परिवर्तन, वैश्विक तापन, वनों की अंधाधुंध कटाई, जैव विविधता का क्षरण, जल–संकट, मृदा अपरदन तथा वायु एवं जल प्रदूषण जैसी समस्याएँ न केवल पारिस्थितिक असंतुलन को जन्म दे रही हैं, बल्कि सामाजिक–आर्थिक असमानताओं, स्वास्थ्य संकट और भविष्य की पीढ़ियों की सुरक्षा पर भी गहरा प्रभाव डाल रही हैं। आधुनिक

अर्जुन पाराशरी
शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली, उ0प्र0
Publisher: Anu Books, DOI: https://doi.org/10.31995/Book.AB356-A26. Ch.11
Book Name : भारतीय ज्ञान परम्परा और सामाजिक विज्ञान
Plagiarism Report: 09%

औद्योगिक सभ्यता द्वारा अपनाया गया उपभोग–प्रधान, अंधाधुंध विकास का मॉडल प्रकृति के अति–दोहन पर आधारित है, जिसने मानव और प्रकृति के बीच सहज संतुलित संबंध को गहराई से क्षतिग्रस्त कर दिया है।

इस संदर्भ में, भारतीय ज्ञान परंपरा एक ऐसे वैकल्पिक, समय–परीक्षित जीवन–दर्शन को प्रस्तुत करती है, जिसमें मनुष्य और प्रकृति के मध्य सह–अस्तित्व, पारस्परिकता, संतुलन, संयम, करुणा और नैतिक उत्तरदायित्व को केंद्रीय स्थान प्राप्त है। भारतीय चिंतन में प्रकृति को केवल भौतिक संसाधन या उपभोग की वस्तु नहीं माना गया, बल्कि उसे माता, देवी, गुरु और सहचर के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। यही कारण है कि भारतीय सभ्यता में पर्यावरण संरक्षण कोई बाह्य नीति या आधुनिक अवधारणा न होकर, सांस्कृतिक आचरण, आध्यात्मिक अनुशासन, नैतिक कर्तव्य तथा दैनिक व्यवहार का अभिन्न अंग रहा है। यहाँ पृथ्वी को माता, नदियों को देवी, वनों को तपोभूमि तथा समस्त जीव–जंतुओं को सहचर मानकर मानव–प्रकृति संबंधों को एक गहन भावनात्मक एवं आत्मिक आधार प्रदान किया गया है, जिससे मनुष्य और प्रकृति के मध्य एक संवेदनशील, उत्तरदायी एवं संतुलित संबंध की स्थापना होती है।

प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य वैदिक, उपनिषदिक, दार्शनिक, बौद्ध–जैन, पौराणिक तथा लोक परंपराओं के शास्त्रीय संदर्भों और समकालीन उदाहरणों के आलोक में भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित पर्यावरणीय सरोकारों का बहुआयामी, समग्र एवं विश्लेषणात्मक विवेचन प्रस्तुत करना है। इसके माध्यम से यह स्पष्ट किया जाएगा कि यह परंपरा न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से समृद्ध रही है, बल्कि आज के वैश्विक पर्यावरण संकट, जलवायु परिवर्तन, जैव–विविधता ह्रास और संसाधन–क्षय जैसी चुनौतियों के समाधान हेतु भी अत्यंत प्रासंगिक, व्यवहारिक और प्रेरणादायी मार्गदर्शन प्रदान करती है। इस प्रकार यह अध्याय पाठकों में प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता, नैतिक उत्तरदायित्व तथा आत्मिक जुड़ाव की भावना विकसित करते हुए एक सतत, संतुलित और समरस विकास–दृष्टि के निर्माण में सहायक सिद्ध होने का प्रयास करता है।

भारतीय ज्ञान परंपराः एक अवधारणात्मक रूपरेखा

भारतीय ज्ञान परंपरा का आशय भारत की उस प्राचीन, सतत, बहुआयामी एवं समग्र बौद्धिक विरासत से है, जिसने सहस्राब्दियों तक भारतीय सभ्यता के दार्शनिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, सामाजिक एवं नैतिक जीवन को सृजित, आकारित एवं दिशा प्रदान की है। यह परंपरा केवल शास्त्रीय ग्रंथों तक सीमित नहीं है, बल्कि लोक व्यवहार, सामाजिक आचरण, दैनिक जीवनशैली, कला, शिल्प और सांस्कृतिक मूल्यों में गहराई से अंतर्निहित रही है। IKS के अंतर्गत वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक, उपनिषद, स्मृतियाँ, पुराण, महाकाव्य, बौद्ध–जैन साहित्य, छह दर्शन परंपराएँ, आयुर्वेद, योग, वास्तु, ज्योतिष तथा विविध लोक परंपराएँ सम्मिलित हैं।

भारतीय ज्ञान परंपरा की मूलभूत विशेषता इसकी समग्रतावादी (Holistic) दृष्टि है, जो मनुष्य, समाज, प्रकृति और समस्त ब्रह्मांड को परस्पर संबद्ध, अंतर्गुम्फित

एवं एक–दूसरे पर निर्भर इकाइयों के रूप में देखती है। यह दृष्टि 'वसुधैव कुटुम्बकम' (सम्पूर्ण पृथ्वी एक परिवार है) के सिद्धांत में प्रतिबिंबित होती है। यह परंपरा मनुष्य और प्रकृति के बीच द्वैत या शोषण के संबंध की बजाय सह–अस्तित्व, सहयोग, संतुलन एवं सामंजस्य को केंद्रीय मूल्य मानती है। इसी कारण भारतीय चिंतन में प्रकृति को केवल उपयोग का संसाधन नहीं, बल्कि माता, देवी, सहचर, गुरु एवं संरक्षक के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। यह दृष्टि आधुनिक पर्यावरणीय दर्शन की अपेक्षा कहीं अधिक नैतिक, आध्यात्मिक, भावनात्मक एवं सांस्कृतिक आधार प्रदान करती है।

ऋग्वेद में इस संबंध का स्पश्ट उल्लेख मिलता है–

"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।" (ऋग्वेद, 1.164.33)

अर्थात् पृथ्वी हमारी माता है और हम उसके पुत्र हैं। यह कथन मानव और प्रकृति के मध्य एक पारिवारिक, भावनात्मक और नैतिक संबंध की स्थापना करता है, जहाँ सन्तान का कर्तव्य माता की रक्षा व सेवा करना होता है।

इसी प्रकार, ईशावास्य उपषिद का उद्घोष पर्यावरणीय नैतिकता का दार्शनिक आधार प्रस्तुत करता है–

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।" (ईशावास्य उपनिषद, श्लोक 1)

अर्थात् इस समस्त जगत में जो कुछ भी है, वह ईश्वर से व्याप्त है। अतः त्याग भाव से ही उपभोग करो, किसी के धन का लोभ मत करो। यह श्लोक उपभोग की मर्यादा, संसाधनों के न्यायसंगत एवं आवश्यकतापूर्ण उपयोग, तथा लोभ एवं अति–संग्रह के त्याग का अत्यंत गहन दार्शनिक आधार प्रदान करता है। यह 'सतत विकास' के सिद्धांत का मूल सार है।

वैदिक साहित्य में पर्यावरणीय चेतना

वेद प्राचीन भारतीय ज्ञान के आदि–स्रोत हैं। इनमें पंचमहाभूत – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश – को जीवन का मूल आधार एवं देवता के रूप में माना गया है। इन तत्वों की पवित्रता, संतुलन एवं संरक्षण की चेतना ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुई है।

(क) पृथ्वी सूक्तः भूमि संरक्षण का महामंत्र

अथर्ववेद का 'पृथ्वी सूक्त' पर्यावरणीय दर्शन का एक अद्वितीय उदाहरण है। यह सूक्त पृथ्वी के प्रति श्रद्धा, कृतज्ञता और संरक्षण के भाव से ओत–प्रोत है।

"पृथिवीं मातरं पृच्छामि यथा सा नो न हिंस्यात्।" (अथर्ववेद, 12.1)

अर्थात् मैं पृथ्वी माता से प्रार्थना करता हूँ कि हम उसका अहित न करें। यहाँ मनुष्य पृथ्वी से अनुमति एवं क्षमा याचना करता है। इस सूक्त में पृथ्वी को सर्व–धारण, सर्व–पोषण करने वाली माता कहा गया है। इसमें वृक्षों, औषधियों, नदियों, पर्वतों, खनिजों और जीव–जंतुओं सहित समस्त जैव विविधता की रक्षा को

मानव का धार्मिक एवं नैतिक कर्तव्य बताया गया है। यह सूक्त प्रकृति के प्रति एक संवादात्मक एवं विनम्र दृष्टिकोण का परिचायक है।

(ख) जल संरक्षण की वैदिक दृष्टि

जल को 'जीवन' का पर्याय माना गया है। ऋग्वेद में जल की महिमा गाई गई है और उसे शुद्ध रखने का आह्वान किया गया है।

"आपः स्वस्ति मा तरन्तु।" (ऋग्वेद, 10.9.4)

अर्थात् जल हमें कल्याण की ओर ले जाए। अन्यत्र कहा गया है, **"आपो हिष्ठा मयोभुवः" (ऋग्वेद, 10.9.1)** अर्थात जल सुखकारक एवं कल्याणकारी है। वेदों में नदियों को 'देवी' कहकर संबोधित किया गया है, जिससे जल–स्रोतों के प्रति श्रद्धा और उनके संरक्षण की भावना स्वतः जन्म लेती है। यह मानसिकता जल–प्रदूषण को एक नैतिक अपराध बना देती है।

(ग) वृक्ष एवं वन संरक्षण का आदेश

वनों को 'अरण्य' या 'तपोवन' कहा गया, जो जीवनदायिनी एवं ज्ञानदायिनी शक्तियों के केंद्र माने गए। वनों की रक्षा हेतु स्पष्ट निर्देश मिलते हैं।

"मा वृक्षं छिन्दि।" (यजुर्वेद, 36.17)

अर्थात् वृक्ष को मत काटो। यह संक्षिप्त किंतु अत्यंत प्रभावी आदेश आधुनिक वन–संरक्षण नीतियों की मूल प्रेरणा है। वैदिक काल में विशिष्ट वृक्षों जैसे पीपल, बरगद, आम को पवित्र माना जाता था, जिससे उनका संरक्षण सुनिश्चित होता था।'**वृक्षायुर्वेद**' (वृक्षों का चिकित्सा विज्ञान) का उल्लेख भी मिलता है।

(घ) वायु एवं अग्नि का महत्व

वायु (वात) को प्राणदाता माना गया है। ऋग्वेद में वायु देवता की स्तुति करते हुए कहा गया है कि वे शुद्ध वायु प्रदान करें। अग्नि को भी पवित्र मानकर उसके नियंत्रित एवं विवेकपूर्ण उपयोग पर बल दिया गया, ताकि वायु प्रदूषण न हो। इस प्रकार, वैदिक चिंतन में पारिस्थितिकी तंत्र के सभी घटकों के संरक्षण हेतु एक समग्र एवं नैतिक ढांचा उपस्थित था।

उपनिषद एवं दर्शन परंपरा में प्रकृति–बोध

उपनिषदों में प्रकृति और ब्रह्म (सर्वव्यापक चेतना) के अभिन्न संबंध को प्रतिपादित किया गया है। अद्वैत वेदांत के अनुसार समस्त जगत एक ही चेतना का विस्तार है – '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**'। यह दृष्टि मनुष्य को प्रकृति से पृथक नहीं, बल्कि उसका अभिन्न अंग मानती है, जो पर्यावरणीय नैतिकता को एक आध्यात्मिक अनिवार्यता बना देती है।

(क) तैत्तिरीय उपनिषदः अन्न की गरिमा

तैत्तिरीय उपनिषद में अन्न को ब्रह्म का रूप माना गया है।

"अन्नं न निन्द्यात्, तद्व्रतम्।" (तैत्तिरीय उपनिषद, 3.7.1)

अर्थात् अन्न का निन्दा (अपमान) मत करो – यही व्रत (संकल्प) है। यह कथन कृषि, मृदा, जल, सूर्य के प्रकाश तथा किसान के श्रम सहित अन्न उत्पादन की सम्पूर्ण प्रक्रिया के प्रति गहरा सम्मान स्थापित करता है। अन्न की बर्बादी को नैतिक पाप माना गया, जो आज के खाद्य सुरक्षा एवं कृषि स्थिरता के विमर्श से सीधे जुड़ता है।

(ख) सांख्य दर्शनः प्रकृति की सृजनशीलता

सांख्य दर्शन की प्रकृति–पुरुष की द्वैत अवधारणा में प्रकृति को सृजनशील, गतिशील शक्ति (प्रकृति) तथा पुरुष को शुद्ध चेतना माना गया है। प्रकृति के तीन गुण– सत्त्व (सात्विकता, संतुलन), रजस (गतिशीलता, परिवर्तन) और तमस (जड़ता, अंधकार) संपूर्ण सृष्टि की विविधता, गतिशीलता एवं संतुलन को समझाते हैं। यह सिद्धांत पारिस्थितिकी तंत्र की जटिल अंतक्रियाओं एवं संतुलन की एक वैज्ञानिक–दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत करता है।

(ग) योग दर्शनः संयम एवं अपरिग्रह

पतंजलि के योगसूत्रों में निर्धारित यम (सामाजिक नियम) पर्यावरणीय नैतिकता के मूल स्तंभ हैंः

1. **अहिंसाः** समस्त प्राणियों के प्रति अहिंसा, जिसमें पर्यावरण को क्षति ना पहुँचाना भी सम्मिलित है।
2. **सत्यः** प्रकृति के साथ संबंधों में सच्चाई एवं ईमानदारी।
3. **अस्तेयः** चोरी न करना, जिसमें प्रकृति के संसाधनों का अन्यायपूर्ण या अत्यधिक दोहन भी आता है।
4. **ब्रह्मचर्यः** ऊर्जा का संयमित उपयोग एवं संरक्षण।
5. **अपरिग्रहः** अनावश्यक संग्रह का त्याग – यह आधुनिक उपभोक्तावाद के लिए सबसे प्रासंगिक सिद्धांत है।

"अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः।" (योगसूत्र, 2.39)

अर्थात् अपरिग्रह की दृढ़ता से प्राप्त होने पर, जन्म और अस्तित्व के रहस्यों का ज्ञान प्रकट होता है। यह सिद्धांत स्पष्ट करता है कि भौतिक संग्रह में कमी आध्यात्मिक एवं बौद्धिक समृद्धि लाती है, जो सतत विकास के लिए आवश्यक मानसिक परिवर्तन की ओर संकेत करता है।

बौद्ध एवं जैन परंपरा में पर्यावरणीय नैतिकता

बौद्ध और जैन दर्शन ने अहिंसा, करुणा और पारस्परिक निर्भरता के सिद्धांतों को केंद्र में रखकर पर्यावरणीय नैतिकता को और सुदृढ़ किया।

(क) बौद्ध दर्शनः प्रतित्यसमुत्पाद का सिद्धांत

बौद्ध दर्शन का मूल प्रतित्यसमुत्पाद (Dependent Origination) सिद्धांत पारिस्थितिक अंतर्संबंधों की गहनतम व्याख्या करता है।

"इदं अस्मिं सति इदं होति।"

अर्थात् इसके होने से वह होता है। यह सिद्धांत बताता है कि संसार की सभी घटनाएँ एवं तत्व परस्पर अविभाज्य रूप से जुड़े हुए हैं। एक वृक्ष का कटना न केवल उस वृक्ष का विनाश है, बल्कि उस पर निर्भर पक्षियों, कीटों, मृदा की गुणवत्ता, जलदृचक्र और अंततः मानव जीवन पर भी प्रभाव डालता है। यह दृष्टिकोण पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem) की आधुनिक अवधारणा का दार्शनिक पूर्ववर्ती है। बौद्ध परंपरा में सभी प्राणियों के प्रति मैत्री (मित्रता) और करुणा के भाव को विकसित करने पर जोर दिया गया।

(ख) जैन दर्शनः अहिंसा का चरम स्वरूप

जैन दर्शन पर्यावरणीय नैतिकता का सर्वोच्च प्रतिरूप प्रस्तुत करता है। यहाँ **'अहिंसा परमो धर्मः'** (अहिंसा सर्वोच्च धर्म है) का सिद्धांत न केवल मानव–मानव संबंधों, बल्कि समस्त स्थूल एवं सूक्ष्म जीव–जगत के प्रति करुणा और संरक्षण की भावना विकसित करता है। जैन अवधारणा के अनुसार पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और वनस्पतियों में भी जीव (सूक्ष्म प्राणी) निवास करते हैं। इसलिए इनका अनावश्यक या हिंसक उपयोग पाप है।

जैन साधुओं द्वारा अपनाई गई जीवनशैली इसका जीवंत उदाहरण हैः

- पाद–परिच्छेदः रास्ते में चलते समय भूमि पर छोटे जीवों को न कुचलें, इसलिए जमीन को झाड़ू से साफ करके चलना।
- जल को छानकर पीनाः जल में रहने वाले सूक्ष्म जीवों की हिंसा से बचने हेतु।
- संयमित भोजनः दिन में एक या दो बार ही सूर्य के प्रकाश में भोजन, ताकि रात में सक्रिय कीटों की हिंसा न हो।

ये प्रथाएँ जैव विविधता के सूक्ष्म स्तर पर संरक्षण की व्यावहारिक मिसाल हैं। जैन व्यापारिक समुदायों द्वारा पशु–आश्रय बनवाना भी पशु कल्याण की सदियों पुरानी परंपरा है।

पुराण, महाकाव्य एवं लोक परंपरा में प्रकृति संरक्षण

रामायण, महाभारत और पुराणों ने पर्यावरणीय मूल्यों को कथा, आख्यान एवं लोकाचार के माध्यम से जन–जन तक पहुँचाया।

(क) महाकाव्यों में प्रकृति का चित्रण

वाल्मीकि रामायण में वनों, नदियों, पर्वतों और पशु–पक्षियों का बड़ा ही जीवंत एवं सम्मानपूर्ण वर्णन मिलता है। भगवान राम, लक्ष्मण और सीता का वनवास प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन का आदर्श प्रस्तुत करता है। वे वन्य जीवों से मित्रता करते हैं और ऋषि–मुनियों द्वारा संरक्षित तपोवनों की रक्षा करते हैं। पक्षीराज जटायु का प्रसंग पशु–पक्षियों के प्रति करुणा एवं उनके प्रति कृतज्ञता को दर्शाता है।

महाभारत में भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को दिए गए उपदेशों में धर्म के अंतर्गत प्रकृति संरक्षण को शामिल किया गया है। अनुशासन पर्व में कहा गया है कि वन, नदी, तालाब आदि का विनाश न करना ही सनातन धर्म है।

(ख) पुराणों में वृक्षारोपण का महत्व

पुराणों में वृक्षारोपण को सबसे बड़ा पुण्य कर्म बताया गया है।

"दशकूपसमा वापी दशवापी समो ह्रदः। दशह्रदसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः।" (मत्स्य पुराण)

अर्थात् एक वापी (तालाब) दस कुओं के बराबर, एक ह्रद (बड़ा तालाब) दस वापियों के बराबर, एक पुत्र दस ह्रदों के बराबर और एक वृक्ष दस पुत्रों के बराबर फलदायी है। इस प्रकार की उक्तियों ने वृक्षारोपण और जलाशय निर्माण को सामाजिक प्रतिष्ठा एवं धार्मिक कर्तव्य का हिस्सा बना दिया, जिससे व्यापक स्तर पर हरियाली एवं जल संचय को बढ़ावा मिला।

(ग) नदी पूजाः जल संरक्षण की सांस्कृतिक रणनीति

भारतीय परंपरा में गंगा, यमुना, नर्मदा, गोदावरी, कावेरी आदि नदियों को देवी का दर्जा देना और उनकी पूजा करना केवल धार्मिक कर्मकांड नहीं, बल्कि जल–संरक्षण एवं जल–शुद्धता की एक सांस्कृतिक रणनीति रही है। नदी को माँ मानने से उसमें कूड़ा फेंकना या उसे प्रदूषित करना नैतिक अपराध और पाप बन जाता था। नदियों के किनारे अनेक तीर्थ स्थल विकसित हुए, जहाँ सामूहिक सफाई एवं संरक्षण की प्रथाएँ थीं। वर्षा ऋतु में 'कजली तीज', 'हरियाली तीज' जैसे त्योहार वृक्षारोपण से जुड़े थे।

(घ) लोक परंपराएँ एवं समकालीन आंदोलनः चिपको आंदोलन

भारतीय लोक परंपराओं में प्रकृति पूजा (वृक्ष पूजा, पहाड़ पूजा) आम बात थी। चिपको आंदोलन (1973) इसी लोक चेतना की समकालीन अभिव्यक्ति था। उत्तराखंड के ग्रामीणों, विशेषकर महिलाओं ने वनों की कटाई रोकने के लिए वृक्षों से चिपक कर (आलिंगन करके) एक अहिंसक प्रतिरोध खड़ा किया। यह आंदोलन वैदिक आदेश 'मा वृक्षं छिन्दि' का सजीव रूप था और इसने दुनिया भर में पर्यावरण आंदोलनों को प्रेरित किया। झारखंड की 'सरना' परंपरा, राजस्थान की 'बिश्नोई' समुदाय द्वारा पेड़ों एवं काले हिरणों की रक्षा हेतु प्राणोत्सर्ग करना, दक्षिण भारत में 'देवर' (पवित्र वन) की परंपरा आदि IKS के जीवंत उदाहरण हैं।

भारतीय जीवन दर्शन और सतत विकासः एक तुलनात्मक विश्लेषण

भारतीय चिंतन में विकास का उद्देश्य केवल भौतिक समृद्धि एवं अर्थ–संचय नहीं, बल्कि व्यक्ति, समाज और प्रकृति के बीच सामंजस्य स्थापित करते हुए आध्यात्मिक, नैतिक एवं मानसिक उन्नयन है। अपरिग्रह (गैर–जरूरी संग्रह का त्याग), संतोष (वर्तमान में संतुष्टि), सह–अस्तित्व (परस्पर निर्भरता का बोध) और संयम (इंद्रिय निग्रह) ये चार स्तंभ सतत विकास के मूल आधार हैं। आधुनिक 'सतत विकास' की अवधारणा, जो भविष्य की पीढ़ियों की क्षमताओं से समझौता किए बिना वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा करने पर बल देती है, वस्तुतः भारतीय जीवन दर्शन की ही एक पुनरावृत्ति प्रतीत होती है।

"सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।"

अर्थात् सभी सुखी हों, सभी नीरोग हों, सभी मंगलमय घटनाएँ देखें और कोई भी दुःख का भागी न बने। यह सार्वभौमिक मंगलकामना मानव, प्रकृति और समस्त सृष्टि के कल्याण की कामना व्यक्त करती है, जो SDGs के 'किसी को पीछे न छोड़ें' (Leave No One Behind) के सिद्धांत से पूर्णतः मेल खाती है।

समकालीन संदर्भ में भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रासंगिकता

आज जब समकालीन विष्व जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता के तीव्र क्षरण, जल–संकट, वायु, जल प्रदूषण तथा संसाधनों के असंतुलित दोहन जैसी गंभीर चुनौतियों से जूझ रहा है, तब भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रासंगिकता और अधिक स्पष्ट हो जाती है। आधुनिक वैश्विक विमर्श में संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रतिपादित सतत विकास लक्ष्य, वस्तुतः भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित मूल्यों की समकालीन वैश्विक अभिव्यक्ति प्रतीत होते हैं। इनके बीच गहरे सैद्धांतिक सम्बन्ध दृष्टिगोचर होते हैं।

- **SDG-2 (जीरो हंगर)**: तैत्तिरीय उपनिषद का **"अन्नं न निन्द्यात्"** सिद्धांत खाद्य सुरक्षा, कृषि संरक्षण, पोषण नैतिकता और खाद्य बर्बादी रोकने का दार्शनिक आधार प्रस्तुत करता है।
- **SDG-3 (स्वस्थ जीवन)**: आयुर्वेद का मूल सूत्र **"स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणं, आतुरस्य विकार प्रशमनं।"** (स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना और रोगी के रोग का निवारण करना) निवारक स्वास्थ्य देखभाल पर बल देता है, जो प्रकृति–संतुलन, आहार–विहार के नियमों से जुड़ा है।
- **SDG-6 (स्वच्छ जल एवं स्वच्छता)**: नदियों की देवी–तुल्य मान्यता, तालाब–बावड़ी निर्माण, वर्षा जल संचयन और जल को पवित्र रखने की सांस्कृतिक प्रथाएँ इस लक्ष्य की प्राचीन अभिव्यक्ति हैं।
- **SDG-12 (जिम्मेदार उपभोग एवं उत्पादन)**: ईशावास्य उपनिषद का **"तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा"** और योग का 'अपरिग्रह' सिद्धांत उपभोग की मर्यादा, संसाधन दक्षता और कचरा प्रबंधन की नैतिक नींव रखते हैं।
- **SDG-13 (जलवायु कार्यवाही)**: वैदिक पंचमहाभूत सिद्धांत प्रकृति के तत्वों के संतुलन पर जोर देता है। वृक्षारोपण, वन संरक्षण की परंपराएँ कार्बन सिंक के रूप में कार्य करती थीं।
- **SDG-15 (स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र)**: जैन दर्शन का अहिंसा सिद्धांत, पुराणों का वृक्ष–महत्त्व, तथा 'देवर' जैसे पवित्र वन जैव विविधता संरक्षण के प्राचीन मॉडल हैं।

इस प्रकार, सतत विकास लक्ष्य कोई पृथक या नई अवधारणा नहीं, बल्कि भारतीय ज्ञान परंपरा में अंतर्निहित पर्यावरणीय सरोकारों का आधुनिक वैश्विक रूपांतरण हैं। IKS इन लक्ष्यों को केवल नीतिगत या तकनीकी ढाँचे के रूप में नहीं,

बल्कि एक जीवन–पद्धति, सांस्कृतिक आचरण और नैतिक अनुशासन के रूप में स्थापित करता है। यह दृष्टिकोण अधिक टिकाऊ है क्योंकि यह बाहरी नियंत्रण पर नहीं, बल्कि आंतरिक मूल्य–बोध पर आधारित है।

आज जब वैश्विक पर्यावरण संकट मानव सभ्यता के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लगा रहा है, तब भारतीय ज्ञान परंपरा एक मूल्य–आधारित, नैतिक और व्यवहारिक समाधान प्रस्तुत करती है। केवल तकनीकी नवाचार पर्याप्त नहीं हैंय जीवनशैली में मूलभूत परिवर्तन अनिवार्य है, जिसकी दिशा एवं दर्शन भारतीय ज्ञान परंपरा प्रदान करती है। इसके लिए आवश्यक है कि IKS के इन सिद्धांतों को शिक्षा पाठ्यक्रम, नीति निर्माण, व्यवसाय प्रथाओं और दैनिक जीवन में समाहित किया जाए।

निष्कर्ष

भारतीय ज्ञान परंपरा में पर्यावरणीय सरोकार मानव सभ्यता की मूल चेतना रहे हैं। वेदों से उपनिषदों, दर्शन से पुराणों और लोक परंपराओं से समकालीन आंदोलनों तक फैली यह चेतना एक सुदृढ़, समग्र एवं नैतिक पर्यावरण दर्शन का निर्माण करती है। यह परंपरा मनुष्य और प्रकृति के मध्य सामंजस्यपूर्ण, पारिवारिक एवं पूज्य संबंध स्थापित कर एक संतुलित, करुणामय एवं सतत जीवन दर्शन प्रस्तुत करती है।

इस अध्याय ने विविध स्रोतों के माध्यम से यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया है कि भारतीय ज्ञान परंपरा की पर्यावरणीय अंतर्दृष्टि केवल ऐतिहासिक विरासत नहीं है, बल्कि वर्तमान वैश्विक संकटों के समाधान हेतु एक जीवंत एवं प्रासंगिक मार्गदर्शिका है। अपरिग्रह, संयम, सह–अस्तित्व और करुणा जैसे सिद्धांत उपभोग, विकास और प्रकृति के बीच नए सामंजस्य की नींव रख सकते हैं। यदि आधुनिक समाज इस समग्र दृष्टि को आत्मसात कर सके, तो न केवल पर्यावरणीय संकट का समाधान संभव है, बल्कि एक अधिक न्यायपूर्ण, संतुलित और आध्यात्मिक रूप से समृद्ध सभ्यता का पुनर्निर्माण भी किया जा सकता है। भारतीय ज्ञान परंपरा, इस प्रकार, हमें भविष्य की ओर देखते हुए अपने अतीत की ओर मुड़कर सीखने का एक शक्तिशाली आह्वान प्रस्तुत करती है।

संदर्भ

1. Bhattacharya, R. S. (Ed.). (2010). Atharvaveda: Sanskrit text with English translation. Parimal Publications.
2. Gadgil, M., & Guha, R. (1995). Ecology and equity: The use and abuse of nature in contemporary India. Penguin Books India.
3. Gupta, S. P. (2010). Environmental ethics in Indian tradition. D.K. Printworld.
4. Ministry of Education, Government of India. (2021). Indian Knowledge System (IKS) framework. New Delhi: Author.

5. मिश्र, वि. (2002) भारतीय संस्कृति और पर्यावरण. साहित्य भवन.
6. Radhakrishnan, S. (1923). Indian Philosophy (Vol. 1). George Allen & Unwin Ltd.
7. Radhakrishnan, S. (1927). Indian Philosophy (Vol. 2). George Allen & Unwin Ltd.
8. शर्मा, रामशरण (2005). प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास. ओरिएंट ब्लैकस्वान.
9. Swami Gambhirananda. (Trans.). (2017). Eight Upanishads: With the commentary of Sankaracarya (Vol. 1). Advaita Ashrama.
10. Swami Satyananda Saraswati. (2000). Yoga Darshan: Vision of the Yoga Upanishads. Bihar School of Yoga.
11. United Nations. (2015). Transforming our world: The 2030 Agenda for Sustainable Development. UN Publications.
12. Vedaratna, P. D. (Ed.). (1998). Rigveda Samhita: With Sayana's commentary. Choukhamba Sanskrit Series Office.